खेती में क्या संकट है?

भारत के किसान नवंबर 28, 2018 को दिल्ली कूच कर चुके हैं। वे उचित दाम, सही मेहनताना, रोज़गार, सस्ती शिक्षा, स्वास्थ्य, भोजन सुविधाएँ, और क़र्ज़ से मुक्ति मांग रहे थे। उनकी चाह थी कि संसद की विशेष बैठक हो जिसमे खेती के संकट पर विस्तार से बहस हो। क्या हमारे लिए ज़रूरी नहीं कि हम इस संकट को समझें?

1. खुदक़शी

संकट की एक निशानी है कि 1955 और 2015 के बीच 3 लाख से ज़्यादा किसानों ने ख़ुदक़शी कर ली है। संसद में दिए जवाब के मुताबिक़ 2012 से 2015 के बीच हर वर्ष औसतन 13,000 किसानों ने अपनी जान ले ली थी। कोई वजह होगी इन मौतों की? सरकारी आंकड़े बताते हैं 100 में से 43 छोटे किसान थे; 40 क़र्ज़ नहीं लौटा पा रहे थे; और 20 की फसल बर्बाद हो गयी थी। लेकिन सरकारी आंकड़ों पर कितना विश्वास किया जाये?

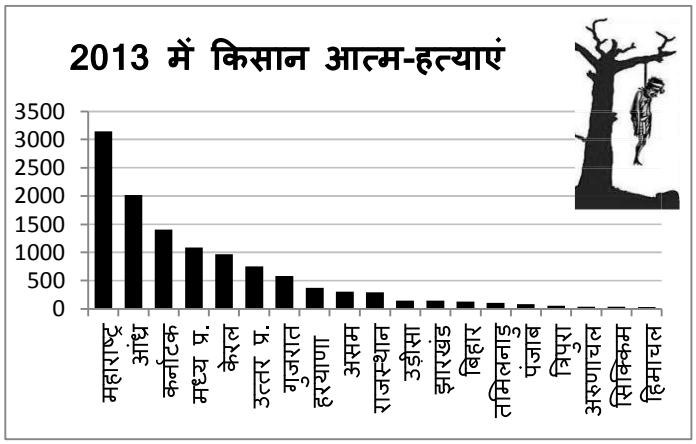

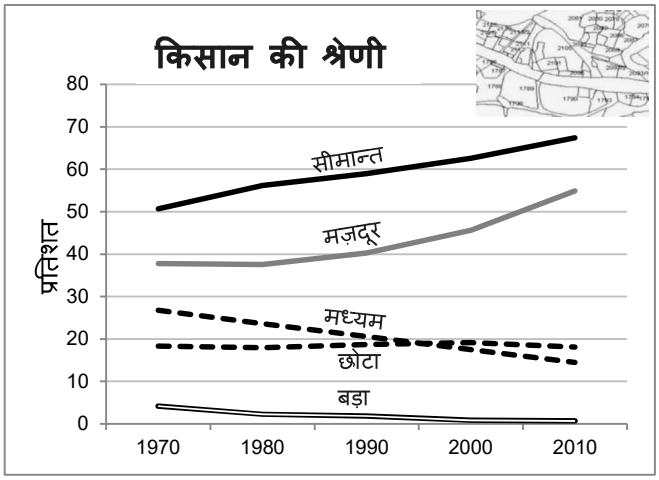

2. ज़मीन

संकट का एक कारण है कि 1951 और 2011 के बीच काश्त की ज़मीन बंटती गयी है - काश्तकार ग्रामीण आबादी का तीन-चौथाई से घट कर करीब आधे हो गए हैं, जबकि भूमिहीन खेत मज़दूर एक-चौथाई से बढ़ कर आधे से भी ज़्यादा हो गए। जैसे रकबा छोटा होता गया है वैसे किसान खेती से मज़दूरी की तरफ बढ़ता गया है। किसानों में सीमान्त किसान आधे से दो-तिहाई तक पहुंच गए; छोटे किसान वही पांचवा हिस्सा हैं; मध्यम और बड़े किसान आधे से तीन-चौथाई घट गए हैं।

3. फ़सल

खेत सिमटने के साथ हर साधन का इस्तेमाल सघन हुआ है। 50 साल से चावल तक़रीबन एक-चौथाई ज़मीन पर बोया जाता रहा है, लेकिन अब गेहूं और तिलहन की खेती दुगुने ज़मीन पर हो रही है; मोटा अनाज सिर्फ आधे ज़मीन पर है; और दलहन की ज़मीन एक-चौथाई घट गयी है। केमिकल खाद का उपयोग 24,000 गुना बढ़ गया है; कीटनाशक दवा 160 गुना। नए 'उत्तम' फसलों में कपास को दुगुना, महीन चावल को ढाई गुना, गेहूं को साढ़े तीन गुना, और गन्ने को चार गुना अधिक पानी चाहिए - खर्च बढ़ेगा ही।

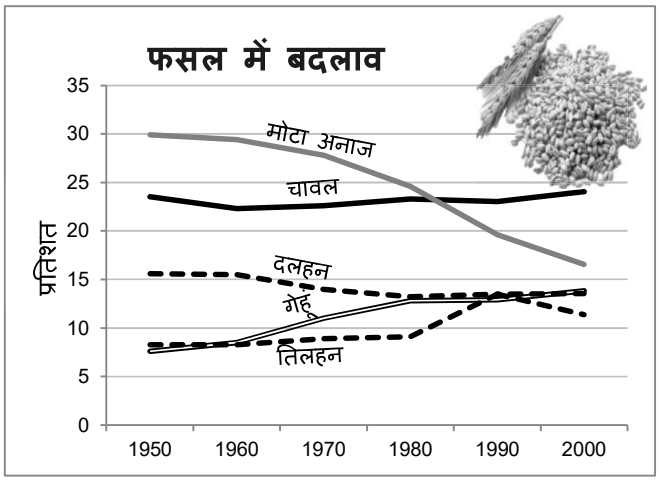

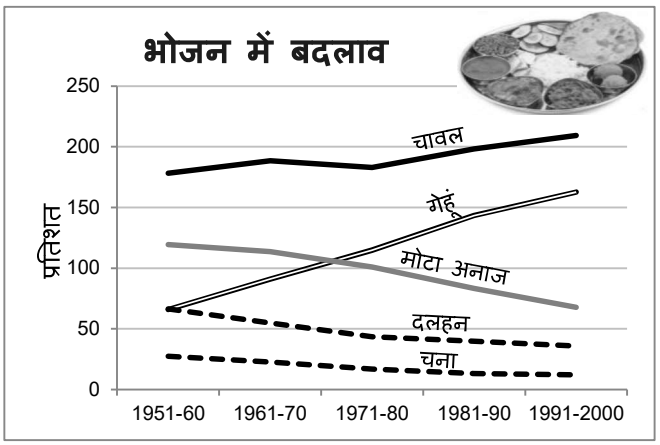

4. भोजन

खेती में ज़्यादा पानी, ज़हरीले केमिकल, और क़र्ज़ के बढ़ते बोझ की वजह से खर्च बढ़ा है और खाना भी बदला है। महीन चावल, गेहूं की खपत ढाई गुना बढ़ी है; लेकिन (कम पानी वाले) पौष्टिक मोटे अनाज, चने और दाल का सेवन आधा हो गया है। 2004 में औसतन हमारा आधा खर्चा खाने पर था, जिसमें 30% हिस्सा अनाज का, दूध-फ़ल का 10% हिस्सा, सब्ज़ी का 8%, और मांस का केवल 3% - जिन सब का आहार में और अधिक होना बहुत ज़रूरी है।

5. समर्थन मूल्य

क्या खेती करने वाले उस अनाज को खा पा रहे हैं जो वे खुद पैदा करते हैं? इसका जवाब पाने के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) को देखा जाये जिसे उत्पादन खर्च से 50% बढ़ाने की बात सरकार ने 2014 में की थी। 2012 से 2018 तक ज़्यादातर अनाज (धान, गेहूं, जौ) के लिए हर साल करीब रु.70 प्रति क्विंटल बढ़ोत्तरी हुई है, जो 11% से कम है। सिर्फ 2018 में जवार, बाजरा, और मक्के का न्यूनतम मूल्य 42%, 37%, और 20% से बढ़ाया गया है।

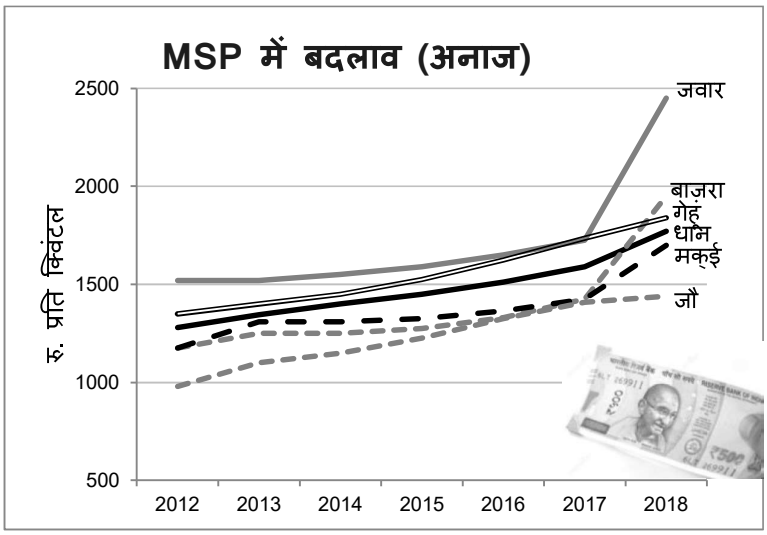

दलहन और अन्य फसलों का भी वही हाल है। अरहर, मूंगफली, और मसूर के लिए मूल्य में सालाना बढ़ोत्तरी रु.200 प्रति क्विंटल की हुई है, जो 8% से कम है। केवल 2018 में मूंग और कपास के मूल्य में 25% और 26% की बढ़ोत्तरी हुई है। स्पष्ट है कि किसी भी फसल के दाम में उत्पादन खर्च से 50% अधिक तक की बढ़ोत्तरी नहीं हुई है।

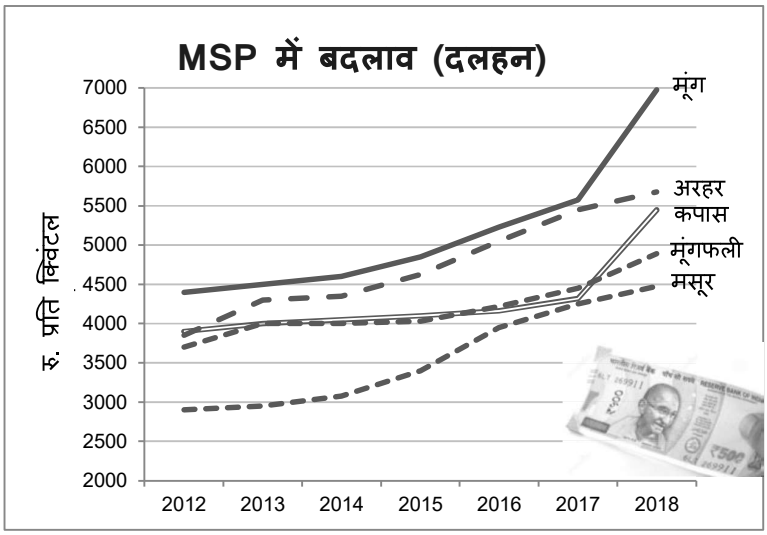

यह भी समझने लायक बात है कि उतने ही ज़मीन और पानी से, महीन धान गेहूं और गन्ने की जगह, किसान 2 से 4 गुना ज़्यादा पौष्टिक और मज़बूत मोटा अनाज और दलहन सस्ते में ऊगा सकता था।

जब किसान को मजबूर किया जायेगा सघन खेती करके कीमती फसल पैदा करने के लिए, जिसके लिए उसे सही दाम भी नहीं मिलता और ना ही वो उसे खुद खा सकता है, तो निश्चित ही संकट गहराएगा।

6. बाजार भाव

- सरकार MSP तय करती है ताकि किसान को उचित दाम मिले और ग्राहक को सस्ता अनाज।
- लेकिन MSP कभी 11% से ज़्यादा नहीं बढ़ा - 2018 में जवार, बाजरा, मूंग, कपास, और मक्के को छोड़ कर।
- अप्रैल 2018 में स्वराज अभियान ने पाया कि मंडियों में सभी फसलों के भाव समर्थन मूल्य से 21% कम थे।

फसल (अप्रैल 2018)	MSP	बाज़ार भाव
तूर / अरहर	5450	4100-4300
मसूर	4250	3000-3570
सरसों / सफेद सरसों	4000	3300-3659
जौ	1410	1100-1150
बंगाल चना	4400	3300-3500
काला चना / उरद	5600	4035-4080

7. मूल्य तय करना

MSP मूल्य तय करने के लिए सरकार सभी खर्चों का ब्यौरा लेती है - जिसमे मज़दूरी, साधन, मशीन, बीज, खाद, पानी, कीटनाशक, पूँजी, टैक्स, सूद, किराया सब कुछ शामिल हैं। सबसे महत्वपूर्ण है मेहनताने का खर्च।

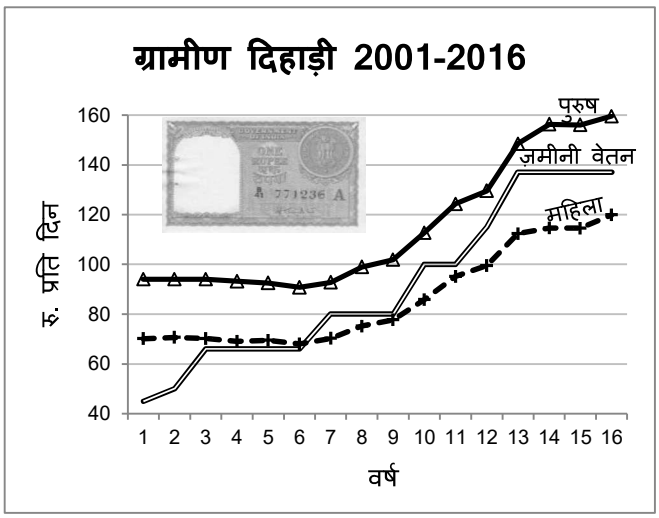

न्यूनतम वेतन कानून 1948 में पारित हुआ था ताकि मज़दूर ज़िंदा रह सके - कुछ सुविधा के साथ। 1996 में ***ज़मीनी वेतन*** की सिफारिश के साथ सरकार ने रु.35 दिहाड़ी माना। हर साल बदलते हुए यह 2017 में रु.176 तक पहुंचा, पर वास्तविक दिहाड़ी से कभी ज़्यादा न हो पाया - महिलाओं का 2007 के बाद का छोड़ कर।

रु.176 की ***ज़मीनी वेतन*** के आधार पर जब राष्ट्रिय किसान समन्वय समिति ने समर्थन मूल्य का हिसाब 2018 में किया तो 15% मुनाफे के साथ गेहूं का मूल्य रु.2422 प्रति क्विंटल निकला - जो 2018 के सरकारी समर्थन मूल्य (रु.1840) से मात्र 32% ज़्यादा है।

8. मेहनत की कीमत

उत्पादन मूल्य में सबसे अहम है मज़दूर की कीमत। 1957 के भारतीय श्रम सम्मेलन में तय हुआ था कि केवल एक मज़दूर के लिए ही नहीं, बल्कि उसके पूरे परिवार के गुज़ारे के लिए ***जीने लायक वेतन*** होना चाहिए, जिसमे होगा:

- चार सदस्यों के परिवार के लिए 2700 कैलोरी प्रति व्यक्ति का पर्याप्त दैनिक भोजन
- हर व्यक्ति के लिए सालाना 18 गज़ कपड़ा
- फैक्ट्री आवास योजना के बराबर घर का किराया
- ईंधन, रौशनी इत्यादि के लिए वेतन का 20% अधिक
- 1991 में, सर्वोच्च न्यायालय ने शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन, त्यौहार, पेंशन वगैरह की लिए 25% और जोड़ दिया

2018 के लिए कर्नाटक केंद्रीय सरकार कर्मचारी महासंघ ने, ऊपर दिए हुए फार्मूला के मुताबिक ***जीने लायक वेतन*** का हिसाब लगाया रु.745 प्रति दिन। यह दिल्ली में हाल ही में घोषित न्यूनतम वेतन (रु.399) का लगभग दुगुना है। ऐसा वेतन पाने से किसान ही नहीं बल्कि उसके और उसके साथ जुड़े मज़दूर के पूरे परिवार को रोटी, कपड़ा, मकान और सभी ज़रूरतों की पूर्ती हो सकती है। यदि इसी ***जीने लायक वेतन*** से गेहूं का समर्थन मूल्य आंका जाये तो वो करीब रु.4800 प्रति क्विंटल पड़ेगा (जो कर्नाटक महासंघ द्वारा अनुमानित कीमत रु.4700 के बराबर ही है)। इस तरह हिसाब लगाने का यह फायदा है कि किसान, खेतिहर मज़दूर, और हर मज़दूर तबके, और उनके परिवार की सभी ज़रूरतें पूरी हो सकती हैं - बिना किसी सरकारी सब्सिडी के। अगर सभी मेहनतकशों को ***जीने लायक वेतन*** मिलने लगे क्या उनकी माली हालत नहीं सुधरेगी और साथ में देश की आर्थिक व्यवस्था भी?

9. अन्य योजनाएं

खेती में संकट का मूल कारण है कि हर सरकार ने ऊपर दी हुई सारी बातों को नकारा है; केवल खेती में उत्पादन बढ़ाने पर ज़ोर दिया है। साथ में किसान को हर चीज़ के लिए ज़िम्मेदार ठहराया है - चाहे वो मौसम में परिवर्तन हो या वायु प्रदूषण या भूख से मौत। लेकिन सरकार की अन्य नीतियों ने भी इस संकट को गहराया है।

भू-अधिग्रहण: 1894 के कानून का इस्तेमाल अंग्रेज़ों ने "सार्वजनिक" कामों के लिए किसानों की ज़मीन छीनने के लिए किया था। आज़ादी के बाद बांधों, खदानों, सड़कों, इत्यादि के लिए भी किसानों की ज़मीन ले ली गयी। लेकिन 1990 के बाद, जब "उदारीकरण" के तहत निजी कम्पनियों के लिए ज़मीन हथियाना शुरू हुआ, तब से किसानों का विरोध बढ़ा है। 2013 में एक नया कानून पारित हुआ जिसमे बिना उचित मुआवज़े और भू-स्वामियों की स्वीकृति के ज़मीन सरकार नहीं ले सकती थी। लेकिन अब सरकार फिर कुछ योजनाओं के लिए ज़मीन छीनना चाहती है।

फसल बीमा: आज़ादी के बाद सभी बीमा कंपनियों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया था। 1972 से 1999 तक सरकार ने बीमा का फायदा लगभग 8 करोड़ किसानों तक पहुंचाया जिसके चलते किसानों ने रु.530 करोड़ जमा किया और बदले में रु.1800 करोड़ के नुकसान की भरपाई हुई। लेकिन 1999 में फिर से निजी कंपनियों को बीमा क्षेत्र में घुसने की इजाज़त मिल गयी और 2010 तक उन्होंने 3 गुना किसानों को जोड़ कर 11 गुना पैसा जमा करवाया।

सूखा राहत: पहले सूखा की घोषणा करने के लिए सरकारी टोलियां प्रभावित क्षेत्र में विस्तार से घूम कर पता करती थीं कि फसल का आधा से ज़्यादा नुकसान हुआ है कि नहीं और उसीके हिसाब से राहत पहुंचाया जाता था। लेकिन 2016 में सरकार ने तय किया कि इस सर्वेक्षण में बहुत देर लगती है इसलिए "वैज्ञानिक अवलोकन" के बहाने अब फसल का नहीं, लेकिन बरसात, बुवाई का क्षेत्र, मिटटी में नमीं, पेड़ पौधों की हालत, जलाशयों की स्थिति, नदियों में बहाव इत्यादि - जो सब आसमानी यंत्रों द्वारा नापे जा सकते हैं - के आधार पर ही सूखे का आंकलन होगा।

ग्रामीण रोज़गार: नरेगा के ऐलान के बाद ग्रामीण इलाकों में बहुत आशा बनी थी की अब लगातार काम मिलेगा। 2018-19 के बजट में कहा गया सबसे अधिक राशि (रु.55,000 करोड़) नरेगा के लिए रखा गया है। लेकिन पिछले वर्ष 2017-18 में केवल 43% मज़दूरी का पेमेंट हुआ था, इसलिए इसी राशि में से पहले वह पेमेंट हुआ। इस वर्ष भी, सितंबर तक, सिर्फ 14% पेमेंट हुआ है। देश के हर कोने से खबर आ रही है कि नरेगा के लिए पैसे कम पड़ रहे हैं और कम्प्यूटर में क़ैद आंकड़ों की वजह से पेमेंट में और ज़्यादा दिक्कत आ रही है।

जब किसानों पर इतनी मार पड़ रही है क्या हमारी ज़िम्मेदारी नहीं बनती कि हम पूछें:

- *क्या महंगी, गुणहीन, और ज़हरीली अनाज पैदा करना देश के लिए फायदेमंद है?*
- *किसान को जब खुद खाने को नहीं मिलता, वो देश को खिलाने के लिए क्या करे?*
- *इन मुद्दों पर क्या संसद में जनता के नुमाइंदों के बीच गंभीर चर्चा नहीं होनी चाहिए?*

अगर आप भी चिंतित हैं तो आइये: सोचिये की क्या शहरों में मेहनतकशों के लिए साधन, भोजन, कीमत, सुविधा, वेतन सब सही मिल रहा है? और किसानों के साथ कांधा मिलाइये!

सम्पर्क: nationforfarmers@gmail.com; 9999973269; **किसानों के लिए राष्ट्र**; A124/6, कटवारिया सराय, नई दिल्ली 110016 (आवश्यकता हो तो खतरा केंद्र से भी सम्पर्क कर सकते हैं: 9910687627)